नवजात शिशु मृत्यु

सबसे बड़ा संघर्ष

जिन्दगी के पहले 28 दिन

विकास संवाद

शीर्षक	नवजात शिशु मृत्यु – जीवन का सबसे बड़ा संघर्ष (एक्शन अलर्ट)
लेखक	सचिन कुमार जैन
पहल	विकास संवाद
संपर्क	ई-7/226, प्रथम तल, धनवंतरी कॉम्प्लेक्स के सामने, अरेरा कॉलोनी, भोपाल, मध्य प्रदेश
फोन	(0755) 4252789
ईमेल	vikassamvad@gmail.com
समय	अगस्त 2017

घोषणा

यह दस्तावेज विश्लेषक के द्वारा बाल केंद्रित नज़रिए से किया गया है। इसमें अधिकृत स्रोतों से पूरी सावधानी के साथ जानकारियाँ, तथ्य और आंकड़े लिए गए हैं।

मुख्य बिंदु

- भारत में वर्ष 2008 से 2015 के बीच आठ साल में 62.40 लाख नवजात शिशु मृत्यु
- देश के चार राज्यों (उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार और मध्यप्रदेश) में देश की कुल नवजात मौतों की संख्या में से 56 प्रतिशत मौतें दर्ज होती हैं.
- एक महीने से पांच साल की उम्र में बच्चों की मृत्यु का जितना जोखिम होता है, उससे 30 गुना ज्यादा जोखिम इन 28 दिनों में होता है.
- इन आठ सालों में भारत में 1.113 करोड़ बच्चे अपना पांचवां जन्मदिन नहीं मना पाए और उनकी मृत्यु हो गई. इनमें से 62.40 लाख बच्चे जन्म के पहले महीने (28 दिन के भीतर) नहीं रहे. यानी 56 प्रतिशत बच्चों की नवजात अवस्था में ही मृत्यु हो गई.
- 5 साल के बच्चों की मृत्यु के मामले में वर्ष 2008 में भारत में 50.9 प्रतिशत नवजात शिशु थे, जो वर्ष 2015 में बढ़कर 58.1 प्रतिशत हो गए.
- देश के स्तर पर शहरों में नवजात शिशु मृत्यु दर 15, जबकि गांवों में 29 है यानी गांवों में मृत्यु दर 1.9 गुना ज्यादा. मध्यप्रदेश में यह 1.8 गुना (शहरों में 37 और गावों में 21), उत्तरप्रदेश में 1.7 गुना (शहरों में 20 और गांवों में 34) और बिहार में 1.5 गुना (शहरों में 20 और गांवों में 29) है. सबसे ज्यादा बुरी स्थिति आंध्रप्रदेश में है, जहां गांवों (29) में नवजात शिशु मृत्यु दर शहरों (12) से 2.4 गुना ज्यादा है, इसी तरह राजस्थान में गांवों में (34) यह दर शहरों से (15) 2.3 गुना ज्यादा है.

वर्ष 2014-15 से 2016-17 के बीच बच्चों-महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए भारत सरकार द्वारा विशेष रूप से 31890 करोड़ रूपए आवंटित किए गए; किन्तु इसमें से 7951 करोड़ रूपए खर्च ही नहीं हुए.

जब महिलाओं को विवाह और प्रजनन के बारे में निर्णय लेने का अधिकार नहीं है, तो कुछ शर्तें स्वाभाविक रूप से महिला विरोधी हो जाती हैं. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून के तहत मातृत्व सहयोग कार्यक्रम का लाभ उन्हीं महिलाओं को मिल पाएगा, जिनकी उम्र गर्भावस्था के समय 19 साल है. यह लाभ केवल पहले जीवित जन्म तक मिलेगा. और इसे संस्थागत प्रसव से भी जोड़ा गया है. यदि जनगणना-2011 के आंकड़ों का विश्लेषण किया जाए, तो पता चलता है कि भारत में एक जीवित जन्म शिशुओं वाली महिलाओं का प्रतिशत 17.6 है, जबकि दो जीवित जन्म शिशुओं वाली महिलाएं 28.1 प्रतिशत हैं, तीन जीवित शिशु को जन्म देने वाली महिलाएं 20.8 प्रतिशत हैं. 33.5 प्रतिशत महिलाओं ने चार या इससे ज्यादा जीवित शिशुओं को जन्म दिया है. इससे स्पष्ट हो जाता है कि एक जीवित बच्चे के प्रसव के लिए ही लाभ दिए जाने की शर्त से केवल 31.70 प्रतिशत प्रसवों की स्थिति में ही मातृत्व सहयोग योजना का लाभ महिलाओं को मिल पाएगा.

आठ सालों में 26.30 लाख नवजात शिशुओं की मृत्यु समय पूर्व जन्म लेने के कारण हुई, यानी 948 हर रोज. विश्व स्वास्थ्य संगठन मानता है कि शिशु का समयपूर्व जन्म मृत्यु और जीवन में किसी न किसी किस्म की विकलांगता का बड़ा कारण है. संगठन के मुताबिक जिन बच्चों का जन्म 36 सप्ताह या 259 दिन की गर्भावस्था अवधि में हो जाता है, उसे समय पूर्व जन्म (प्री-मेच्यौर बर्थ) माना जाता है. भारत में अध्ययनों के मुताबिक लगभग 2.6 करोड़ बच्चों का जन्म होता है, जिनमें से 35 लाख बच्चे यानी हर सौ जीवित जन्मों में से 13 बच्चे समय पूर्व जन्म लेते हैं.

परिभाषाएं

नवजात शिशु मृत्यु	जीवन के पहले 28 दिनों यानी जन्म के 28 दिनों के भीतर होने वाली मृत्यु को नवजात शिशु मृत्यु कहा जाता है.
नवजात शिशु मृत्यु दर	प्रति एक हज़ार जीवित जन्म पर होने वाली नवजात शिशुओं की मृत्यु की संख्या को नवजात शिशु मृत्यु दर कहा जाता है.
शिशु मृत्यु	जीवन के पहले साल (जन्म से एक वर्ष की उम्र तक) में होने वाली मृत्यु को शिशु मृत्यु कहा जाता है.
शिशु मृत्यु दर	प्रति एक हज़ार जीवित जन्म पर होने वाली शिशुओं की मृत्यु की संख्या को शिशु मृत्यु दर कहा जाता है.
5 वर्ष तक के बच्चों की मृत्यु	जीवन के पहले 5 सालों (जन्म से 5 साल की उम्र तक) में होने वाली मृत्यु को 5 वर्ष तक के बच्चों की मृत्यु (अंडर फाइव मोर्टेलिटी) कहा जाता है.
5 वर्ष तक के बच्चों की मृत्यु दर	प्रति एक हज़ार जीवित जन्म पर होने वाली 5 साल तक के बच्चों की मृत्यु की संख्या को 5 साल तक के बच्चों की मृत्यु दर कहा जाता है.
समय से पूर्व जन्म	गर्भावस्था की सामान्य अवधि 40 सप्ताह होती है. जब बच्चे का जन्म 36 सप्ताह में होता है, तो उसे समय पूर्व जन्म कहा जाता है.

आठ साल में 62.40 लाख नवजात शिशु मृत्यु, क्योंकि...

जन्म के ठीक बाद मौत होने का सबसे ज्यादा जोखिम होता है;

छः महत्वपूर्ण तथ्य सामने हैं –

एक – ग्लोबल ब्रेस्ट फीडिंग स्कोरकार्ड के मुताबिक बच्चों को माँ का दूध नहीं मिलने के कारण भारत की अर्थव्यवस्था को 9000 करोड़ रूपए का नुकसान होता है. जब बच्चों को छह माह तक केवल स्तनपान नहीं मिलता है तो लगभग 1 लाख बच्चों की इससे जुड़े कारणों से मौत हो जाती है. इस रिपोर्ट में बताया गया है कि बोलीविया, मलावी, नेपाल, सोलोमन आइलैंड, बुरुन्डी, कम्बोडिया, जाम्बिया, किरिबाती, इरीट्रिया जैसे 23 देशों ने छोटे बच्चों में केवल स्तनपान के 60 प्रतिशत के स्तर को पा लिया है, किन्तु इस सूची में भारत शामिल नहीं है.

दो – द लांसेट के अध्ययन के मुताबिक वर्ष 2015 में गर्भावस्था और प्रसव के दौरान 45,000 महिलाओं की मृत्यु हुई.

तीन – जनगणना 2011 के मुताबिक लगभग 16 करोड़ महिलाएं घरेलू और देखभाल की जिम्मेदारी निभाते हुए श्रम करती हैं; लेकिन मौजूदा आर्थिक नीतियों में उनके योगदान की कहीं कोई गणना नहीं होती है. भारत में केवल संगठित क्षेत्र की महिलाओं (लगभग 18 लाख) को ही मातृत्व हक (वेतन के साथ अवकाश) मिलता रहा है, जबकि हेल्थ मैनेजमेंट इंफरमैशन सिस्टम के मुताबिक गर्भवती महिलाओं की वर्ष 2016 में कुल संख्या 2.96 करोड़ थी. इनके लिए जनवरी 2017 से राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून के तहत 6000 रूपए की आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाने के लिए मातृत्व लाभ कार्यक्रम को व्यापक रूप से लागू किया गया; परन्तु चार शर्तों के जरिए 70 प्रतिशत महिलाओं को इस कार्यक्रम के लाभों से वंचित भी कर दिया गया.

चार - जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय और इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ टेक्नोलोजी (रुड़की) के अध्ययन (2016) के मुताबिक मातृत्व स्वास्थ्य पर होने वाला व्यय 46.6 प्रतिशत महिलाओं को गरीबी में धकेल देता है. इससे पता चला कि सबसे गहरा असर आदिवासी महिलाओं पर पड़ता है, जहाँ 71.5 प्रतिशत महिलाएं मातृत्व स्वास्थ्य पर होने वाले व्यय के कारण गरीबी में धकेली गयीं.

पांच – जन्म लेने के बाद के पहले 28 दिन जीवन के सबसे संवेदनशील दिन होते हैं. बचपन की यह उम्र मृत्यु की आशंकाओं से भरी होती है. एक महीने से पांच साल की उम्र में बच्चों की मृत्यु का जितना जोखिम होता है, उससे 30 गुना ज्यादा जोखिम इन 28 दिनों में होता है. (जर्नल आफ पेरिनेटोलाजी, 2016)

छः – जीवन की शुरुआत मृत्यु के जोखिम से होती है –

- पांच साल तक की उम्र तक कुल जितनी बाल मृत्यु होती हैं, उनमें से लगभग 85 प्रतिशत पहले साल में हो जाती हैं.
- एक साल तक की उम्र में जितनी मौतें होती हैं, उनमें से 67 प्रतिशत पहले 28 दिनों में होती हैं.
- जन्म के बाद जितने नवजात बच्चों की मौतें होती हैं, उनमें से 74 प्रतिशत की मृत्यु पहले सात दिनों में हो जाती हैं.
- जन्म के बाद चार हफ्ते यानी 28 दिनों में जितने बच्चों की मौतें होती हैं, उनमें से 37 प्रतिशत मौतें पहले 24 घंटों में हो जाती हैं.

कम उम्र में विवाह, गर्भावस्था के दौरान सही भोजन की कमी और भेदभाव, मानसिक-शारीरिक-भावनात्मक अस्थिरता, विश्राम और जरूरी स्वास्थ्य सेवाएं न मिलने, सुरक्षित प्रसव न होने और प्रसव के बाद बच्चे को माँ का दूध न मिलने की कड़ियाँ आपस में मिलकर मातृ-शिशु मृत्यु (खास तौर पर नवजात शिशु) का आधार तैयार करती हैं. वास्तविकता यह है कि ऐसी स्थिति में 1000 दिनों के सिद्धांत (नौ माह की गर्भावस्था और बच्चे के दो साल की उम्र, जब तक वह स्तनपान कर रहा है) को व्यापक स्तर पर लागू करने की जरूरत है.

अब जरूरी है कि हम इस वास्तविकता को जानने के लिए तैयार रहें, जिससे हमें पता चलता है कि बच्चों के प्रति भी राज्य व्यवस्था की संवेदनाएं अभी सुसुप्त अवस्था में बनी हुई हैं.

भारत में नवजात शिशुओं का असमय मर जाना

वर्ष 2008 से 2015 के बीच भारत और भारतीय राज्यों में नवजात शिशुओं की मृत्यु दर और वास्तविक मृत्यु का तथ्यात्मक विश्लेषण करते हुए यह पाया गया कि इन आठ सालों में भारत में 1.113 करोड़ बच्चे अपना पांचवां जन्मदिन नहीं मना पाए और उनकी मृत्यु हो गई.

चौंकाने वाला तथ्य यह है कि इनमें से 62.40 लाख बच्चे जन्म के पहले महीने (नवजात शिशु मृत्यु यानी जन्म के 28 दिन के भीतर होने वाली मृत्यु) में ही मौत हो गई. पांच साल से कम उम्र के बच्चों की कुल मौतों में से 56 प्रतिशत की नवजात अवस्था में ही मौत हो गई. इसे हम 5 साल से कम उम्र में होने वाली बाल मृत्यु में नवजात शिशुओं की मृत्यु का हिस्सा कह सकते हैं.

आठ साल की स्थिति का अध्ययन करते हुए यह पता चलता है कि हर 1000 जीवित जन्म पर 5 साल से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर में नवजात शिशु मृत्यु दर का हिस्सा लगातार बढ़ता गया है. 5 साल के बच्चों की मृत्यु में वर्ष 2008 में भारत में 50.9 प्रतिशत नवजात शिशु थे, जो वर्ष 2015 में बढ़कर 58.1 प्रतिशत हो गए. बहरहाल इस अवधि में नवजात शिशुओं की मृत्यु की अनुमानित संख्या 9.23 लाख से कम होकर 6.67 लाख पर आ गई है.

वर्ष 2015 की स्थिति में हर घंटे 74 नवजात शिशुओं का हृदय काम करना बंद कर दे रहा था, किन्तु समाज और व्यवस्था के हृदय में संवेदना पूरी तरह से सक्रिय होकर काम नहीं कर पा रही थी. वर्ष 2008 से 15 के बीच हर घंटे औसतन 89 नवजात शिशुओं की मृत्यु होती रही है.

भारत में राज्यों की स्थिति

नवजात शिशु मृत्यु यानी जन्म के 28 दिन के भीतर मौत

वर्ष 2008 से 2015 के बीच मध्यप्रदेश में 6.18 लाख बच्चों की मृत्यु जन्म के पहले 28 दिनों में ही हो गई. वर्ष 2008 में 93.7 हज़ार बच्चों की मृत्यु हुई थी, जो वर्ष 2015 में घटकर 64.5 हजार तक आई है, किन्तु राज्य में नवजात शिशु स्वास्थ्य और मातृत्व स्वास्थ्य के लिए राज्य की तरफ से तत्परता दिखाई नहीं देती है.

इस अवधि में उत्तरप्रदेश में 16.84 लाख नवजात शिशुओं की मृत्यु हुई. आठ साल में नवजात शिशु मृत्यु की संख्या 2.52 लाख से घटकर 1.72 लाख तक आई है. राजस्थान में इन आठ सालों में 5.12 लाख, बिहार में 6.54 लाख, झारखंड में 1.70 लाख, महाराष्ट्र में 2.92 लाख, आन्ध्रप्रदेश में 3.35 लाख, गुजरात में 2.95 लाख नवजात शिशुओं की मृत्यु हुई.

देश के चार राज्यों (उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार और मध्यप्रदेश) में देश की कुल नवजात मौतों की संख्या में से 56 प्रतिशत मौतें दर्ज होती हैं.

शिशु मृत्यु यानी जन्म के एक साल की उम्र तक हुई मृत्यु

वर्ष 2008 से 2015 की अवधि में भारत में 91 लाख बच्चे अपना पहला जन्मदिन नहीं मना पाए. इस अवधि में शिशु मृत्यु दर 53 से घटकर 37 पर आई है, पर फिर भी वर्ष 2015 के एक साल में ही 9.57 लाख बच्चों की मृत्यु हुई थी.

भारत के चार राज्यों, उत्तरप्रदेश (24.37 लाख), मध्यप्रदेश (8.94 लाख), राजस्थान (7.31 लाख) बिहार (10.3 लाख में सबसे ज्यादा संकट की स्थिति है. भारत के 56 प्रतिशत शिशु मृत्यु इन्हीं राज्यों में होती हैं. बहरहाल महाराष्ट्र (3.96 लाख), आंध्रप्रदेश (5.11 लाख), गुजरात (4.13 लाख) और पश्चिम बंगाल (3.68 लाख) की स्थिति भी बहुत चिंताजनक है.

पांच वर्ष तक के बच्चों की मृत्यु

जब भारत के तंत्र का लगभग हर हिस्सा, देश के सभी राजनीतिक दल सकल घरेलू उत्पाद में बढ़ोतरी की बात-बहस और वायदा कर रहे थे, तब उनकी प्राथमिकताओं में बच्चों के जीवन उनके संरक्षण का वायदा अंकुरित भी नहीं हो पा रहा था. वस्तुतः सभी राजनीतिक विचार और राजनीतिक दल यह विश्वास करते हैं कि जब आर्थिक विकास होगा, तो अपने आप बच्चों की स्थिति में बदलाव आने लगेगा; वास्तव में यह एक अंधविश्वास है. बच्चों की स्थिति को बदलने के लिए राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक प्रतिबद्धता अनिवार्यता है, जो भारत में दिखाई नहीं देती है. जब से वैश्विक स्तर पर सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों की चर्चा शुरू हुई है, तबसे भारत में बच्चों के लिए कुछ स्वास्थ्य योजनाएं जरूर बनने लगी हैं, किन्तु उनका दायरा जागरूकता तक ही सीमित रहा है.

भारत में वर्ष 2008 से 2015 की अवधि में पांच साल से कम उम्र के 1.13 करोड़ बच्चे दुनिया से चले गए. हमने उन्हें संभाला नहीं और उनका जीवन समाप्त हो गया. इनमें से 31.11 लाख बच्चों की मृत्यु उत्तरप्रदेश में, 11.59 लाख बच्चों की मृत्यु मध्यप्रदेश में, 8.9 लाख बच्चों की मृत्यु राजस्थान में, 13.40 लाख बच्चों की मृत्यु बिहार में हुई.

छोटे बच्चों की मृत्यु के बड़े कारण

व्यवस्थित वैश्विक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय अध्ययनों से नवजात शिशु मृत्यु दर इतनी ज्यादा होने के चार महत्वपूर्ण कारण पता चले हैं - समय से पहले जन्म लेने के कारण होने वाली जटिलताएं (43.7 प्रतिशत), विलंबित और जटिल प्रसव के कारण (19.2 प्रतिशत), निमोनिया, सेप्सिस और अतिसार यानी संक्रमण के कारण (20.8 प्रतिशत), जन्मजात असामान्यताओं के कारण (8.1 प्रतिशत).

भारत के महापंजीयक की नमूना पंजीयन प्रणाली (एसआरएस) के मुताबिक भारत में शिशुओं की मौत का कारण समय से पूर्व जन्म लेना और जन्म के समय बच्चों का वज़न कम होना (35.9 प्रतिशत), निमोनिया (16.9 प्रतिशत), जन्म एस्फिक्सिया एवं जन्म आघात (9.9 प्रतिशत), अन्य गैर संचारी बीमारियाँ (7.9 प्रतिशत), डायरिया रोग (6.7 प्रतिशत), जन्मजाति विसंगतियाँ (4.6 प्रतिशत) और संक्रमण (4.2 प्रतिशत) हैं.

जीवन की उम्र रह गई 28 दिन, पर बाल स्वास्थ्य पर

3 साल में खर्च ही नहीं हुए 7951 करोड़ रुपए

भारत में वर्ष 2008 से 2015 के बीच हर रोज औसतन 2137 नवजात शिशुओं की मृत्यु हुई है. देश में अब भी शिशु मृत्यु की पंजीकृत संख्या और अनुमानित संख्या में बड़ा अंतर दिखाई देता है क्योंकि मैदानी स्वास्थ्य व्यवस्था और शासन व्यवस्था के बीच केवल आभासी रिश्ता है. भारत के महापंजीयक की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2015 में भारत में 76.6 प्रतिशत मौतों का ही पंजीयन हुआ. बिहार में मृत्यु के 31.9, मध्यप्रदेश में 53.8, उत्तरप्रदेश में 44.2, और पश्चिम बंगाल में 73.5 प्रतिशत पंजीयन हुए. इसमें माना जा सकता है कि पंजीयन की व्यवस्था न हो पाने के कारण नवजात शिशुओं की मृत्यु की वास्तविक स्थिति नवजात शिशु मृत्यु दर और अनुमानित जीवित जन्मों के आंकड़ों के अध्ययन से पता चलती है.

भारत के संविधान के नज़रिए से यह अपेक्षा की जाती है कि नागरिकों के जीवन के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए राज्य जिम्मेदार और विश्वसनीय भूमिका निभाएगा. निजीकरण और बाज़ार के पक्ष में उदारीकरण की नीतियां से अभी यह अपेक्षा कल्पना में बदल रही है.

हमारी मौजूदा स्थिति ऐसी है, जब शिशुओं की मृत्यु देश के विकास को दूसरे सभी मानकों को धराशायी कर देती है. दुनिया में सबसे ज्यादा नवजात शिशु मृत्यु भारत में होती हैं. वर्ष 2008 से 2015 के बीच भारत में 62.40 लाख बच्चे जन्म लेने के 28 दिनों के भीतर ही मर गए. ऐसे में जरूरी है कि यह अध्ययन किया जाए कि इसके कारण क्या हैं और नीतियों के स्तर पर हमारी प्रतिबद्धता कहाँ कमज़ोर है?

नवजात शिशु मृत्यु की समस्या की जड़ें लैंगिक भेदभाव और जीवन पर दूरगामी असर डालने वाले व्यवहार और सार्वजनिक स्वास्थ्य-पोषण सेवाओं को खत्म किये जाने की नीति में दबी हुई हैं. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (चार) के मुताबिक भारत में 26.8 प्रतिशत विवाह 18 साल से कम उम्र में हो जाते हैं. बिहार में 39.1 प्रतिशत, आँध्रप्रदेश में 32.7 प्रतिशत, गुजरात में 24.9 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 30 प्रतिशत, राजस्थान में 35.4 प्रतिशत और पश्चिम बंगाल में 40.7 प्रतिशत विवाह कानूनी उम्र में पहुँचने से पहले हो जाते हैं. लड़कियों के कम उम्र में गर्भवती होने का कारण बनते हैं. इससे बच्चियां कमज़ोर, कुपोषित और असुरक्षित भी होती जाती हैं.

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (चार) के मुताबिक केवल 21 प्रतिशत महिलाओं को ही प्रसव से पूर्व की सभी सेवाएं (चार स्वास्थ्य जांचें, टिटनेस का कम से कम एक इंजेक्शन और 100 दिन की आयरन फोलिक एसिड की खुराक) मिल पाती है. बिहार में यह संख्या 3.3 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 11.4 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 32.4 प्रतिशत और पश्चिम बंगाल में 21.8 प्रतिशत है. ऐसे में सुरक्षित प्रसव और नवजात की सुरक्षा की अपेक्षा कैसे हो?
ये सेवाएं महिलाओं और शिशु के जीवन की सुरक्षा के नज़रिए से बहुत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि खून की कमी और सही देखरेख के अभाव में ही मातृ मृत्यु और नवजात शिशु मृत्यु की संभावना बढ़ जाती हैं.

एनएफएचएस (चार) के मुताबिक भारत में 50.3 प्रतिशत गर्भवती महिलाएं खून की कमी की शिकार हैं. बिहार में इसका प्रतिशत 58.3 है. गुजरात में 51.3 प्रतिशत, झारखण्ड में 62.6 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 54.6 प्रतिशत, उत्तरप्रदेश में 51 प्रतिशत और पश्चिम बंगाल में 53.6 प्रतिशत महिलाएं इस अवस्था में खून की कमी होती हैं.

गरीबी का स्वास्थ्य के ऊपर गहरा असर होता है. स्वास्थ्य का गरीबी से गहरा रिश्ता भी है. यह एक जरूरत रही है कि मातृत्व स्वास्थ्य और नवजात शिशु स्वास्थ्य की व्यवस्था लोक स्वास्थ्य सेवाओं का अच्छा हिस्सा हो, पर ऐसा अब तक हो नहीं पाया है. भारत में प्रसव के लिए एक परिवार को निजी जमापूंजी से 3198 रुपए व्यय करना होता है. पश्चिम बंगाल में यह 7782 रुपए और महाराष्ट्र में 3487 रुपए है, लेकिन यह व्यय मध्यप्रदेश में 1387 रुपए और बिहार में 1724 रुपए यानी बहुत कम है. चूंकि सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं की प्रगति के लिए सरकारी निवेश बहुत कम रहा है, इसलिए स्वास्थ्य पर निजी व्यय बहुत बढ़ गया है. ऐसे में मध्यप्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में लोग गरीबी के कारण अच्छी स्वास्थ्य सेवाएं हासिल नहीं कर पा रहे हैं.

शहरी-ग्रामीण के बीच असमानता

गर्भावस्था के दौरान, प्रसव के लिए और नवजात शिशु अवस्था में कुछ खास स्वास्थ्य सेवाओं की जरूरत होती है. भारत में ये जरूरी स्वास्थ्य सेवाएं शहरों में ज्यादा केंद्रित हैं और गांवों में इनका अभाव है. नवजात शिशु मृत्यु दर के आनुपातिक अध्ययन से यह बात साबित होती है. भारत के स्तर पर शहरों में नवजात शिशु मृत्यु दर 15 है, जबकि गांवों में 29 है यानी गांवों में मृत्यु दर 1.9 गुना ज्यादा है. मध्यप्रदेश में यह 1.8 गुना (शहरों में 21 और गांवों में 37), उत्तरप्रदेश में 1.7 गुना (शहरों में 20 और गांवों में 34) और बिहार में 1.5 गुना (शहरों में 20 और गांवों में 29) है.

सबसे ज्यादा गहरी खाई आंध्रप्रदेश में है, जहाँ गांवों (29) में नवजात शिशु मृत्यु दर शहरों (12) से 2.4 गुना ज्यादा है, इसी तरह राजस्थान में गांवों में (34) यह दर शहरों से (15) 2.3 गुना ज्यादा है.

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (चार) से भी यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में हर पांच में से केवल एक गर्भवती महिला को ही प्रसव पूर्व स्वास्थ्य सेवाएं मिल पा रही हैं. इसी तरह किशोरावस्था में पोषण और शिक्षा से वंचितपन और बाल विवाह मातृत्व असुरक्षा और नवजात शिशु मृत्यु का बड़ा कारण बने हुए हैं.

सरकारी कार्यक्रम की हकीकत

हम सोच रहे हैं कि भारत में लाखों बच्चे जन्म के एक महीने के भीतर या कम उम्र में मर जा रहे हैं, किन्तु बाज़ार और निजी व्यवस्था आधारित कूटनीतिक अर्थशास्त्र में फँसी हुई है. वर्ष 2014-15 से 2016-17 के बीच बच्चों-महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए भारत सरकार द्वारा 31,890 करोड़ रुपए आवंटित किए गए; किन्तु इसमें से 7951 करोड़ रुपए खर्च ही नहीं हुए....पर कहीं कोई हल्ला नहीं हुआ. यह राशि किसी और मद पर खर्च की जा रही है.

शिशु स्वास्थ्य और उनके जीवन की संभावना महिलाओं के स्वास्थ्य और उनकी सामाजिक स्थिति से सीधे जुड़ी है. फिर भी सरकार की स्वास्थ्य नीति और कार्यक्रम बच्चों के जीवन को सुरक्षित बनाने में बड़ी भूमिका निभा सकते हैं. भारत सरकार भारतीय नवजात कार्ययोजना का संचालन कर रही है. इसके साथ ही आरएमएनसीएच+ए का संचालन भी किया जा रहा है. कहते हैं कि सरकार सभी प्रसव स्थलों पर अनिवार्य नवजात स्वास्थ्य देखरेख और उपचार की व्यवस्था कर रही है, विशेष नवजात शिशु उपचार इकाई बनाये जा रहे हैं; पर इन कार्य योजनाओं का सच क्या है?

हम वर्ष 2014-15 से 2016-17 के बजट का आंकलन करते हैं. नवजात बच्चों के जीवन और मातृत्व स्वास्थ्य के लिए इन तीन सालों में बिहार को 2,947 करोड़ रुपए का आवंटन हुआ, इनमें से 838 करोड़ रुपए खर्च ही नहीं हुए.

मध्यप्रदेश ने 2,677 करोड़ रुपए में से 445 करोड़ रुपए खर्च नहीं किए, राजस्थान ने 2,079 करोड़ में से 552 करोड़ रुपए, उत्तरप्रदेश ने 4,919 करोड़ रुपए में से 1,643 करोड़ रुपए और महाराष्ट्र ने 2,119 करोड़ रुपए में से 744 करोड़ रुपए खर्च नहीं किए.

आरसीएच फ्लेक्सिपूल के तहत राज्य परियोजना क्रियान्वयन कार्ययोजना के लिए आवंटित बजट और अव्यय की स्थिति 2014-15 से 2016-17) राशि लाख रुपए में												
	2014-15			2015-16			2016-17			तीन वर्ष में कुल		
राज्य	*आवंटित बजट*	*खर्च*	*खर्च नहीं*	*आवंटित बजट*	*खर्च*	*खर्च नहीं*	*आवंटित बजट*	*खर्च*	*खर्च नहीं*	आवंटन	खर्च	% *खर्च नहीं*
बिहार	97267.32	70630.64	-26636.7	97644.21	74567	-23077.2	99794.32	65679.66	-34114.66	294705.85	-83828.6	-28.4
मध्यप्रदेश	74097.47	67560.8	-6536.67	92524.01	76025.88	-16498.1	101071.83	79612.26	-21459.57	267693.31	-44494.4	-16.6
राजस्थान	66197.89	52451.72	-13746.2	70887.54	49154.08	-21733.5	70793.66	51039.65	-19754.01	207879.09	-55233.6	-26.6
उप्र	141859.5	101101.6	-40757.9	151734.3	101974.6	-49759.8	198297.17	125451.4	-72845.74	491890.95	-163363	-33.2
महाराष्ट्र	67968.59	47744.07	-20224.5	63169.16	44521.79	-18647.4	80740.63	45223.83	-35516.8	211878.38	-74388.7	-35.1
भारत	**996105**	**737419.5**	**-258686**	**1044753**	**792273.4**	**-252480**	**1148152.72**	**864209.9**	**-283942.78**	**3189010.82**	**-795108**	**-24.9**
स्रोत – लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार												

सरकारी स्वास्थ्य सेवाएँ हैं जरूरी

अक्सर ग्रामीण परिवेश से आए परिवारों और आदिवासी समाज को 'अंधविश्वासी कहकर उन्हें दोयम दर्जे का साबित करने की कोशिश की जाती है. लगभग 3 दशकों के लोक स्वास्थ्य सेवाओं के विश्लेषणों में यही निष्कर्ष दिया गया है कि पिछड़े हुए लोग स्वास्थ्य सेवाओं का इस्तेमाल नहीं करना चाहते हैं; किन्तु मध्यप्रदेश के सभी जिलों में संचालित 54 नवजात शिशु उपचार ईकाइयों (एसएनसीयू) का आंकलन बताता है कि समाज बहुत हद तक स्वास्थ्य सेवाओं का उपयोग करता है, बशर्ते सेवाएं सम्मानजनक तरीके से उपलब्ध हों.

जिस तरह से स्वास्थ्य सेवाओं का निजीकरण किया जा रहा है, उसका सबसे गहरा नकारात्मक असर मातृत्व स्वास्थ्य और नवजात शिशु के जीवन पर पड़ेगा. मध्यप्रदेश में नवजात शिशु स्वास्थ्य सेवाओं का अनुभव बताता है कि समाज में सरकारी सेवाओं की बहुत मांग है. वे मजबूरी में निजी स्वास्थ्य केन्द्रों की तरफ जाने को मजबूर हैं. व्यवस्थित तरीके से सरकारी अस्पतालों की गुणवत्ता को खराब किया जा रहा है, ताकि लोग निजी अस्पताल जाने को मजबूर हों.

यह उल्लेखनीय तथ्य है कि आदिवासी बाहुल्य समेत 28 जिलों में एसएनसीयू में बिस्तरों के उपयोग/कब्ज़े के दर 100 प्रतिशत से ज्यादा रही. यह बालाघाट में 240 प्रतिशत, बड़वानी में 204 प्रतिशत, छतरपुर में 166 प्रतिशत, गुना में 193 प्रतिशत, जबलपुर में 164 प्रतिशत, भोपाल में 262 प्रतिशत, इन्दौर में 215 प्रतिशत, ग्वालियर में 247 प्रतिशत और शिवपुरी में 156 प्रतिशत रही. राज्य के स्तर पर बिस्तरों के उपयोग का औसत 119 प्रतिशत रहा. इसका मतलब इन ईकाइयों में जरूरत की तुलना में बिस्तरों की संख्या बहुत कम है. संसाधनों की कमी का अंदाज़ा इन तथ्यों से भी लगता है कि इन ईकाइयों में 209 रेडिएंट वार्मर, 243 इन्फुज़न पम्प, 155 पल्स आक्सीमीटर की भी कमी है.

तथ्यों से यह साबित होता है कि एसएनसीयू में भी संकट तो है, क्योंकि वहाँ अभी पूरी व्यवस्थाएं नहीं हैं. मध्यप्रदेश में वर्ष 2016-17 में इन इकाईयों में 93,395 नवजात बच्चे दाखिल कराये गए, जिनमें से 12,865 की मृत्यु हो गई.

इसी तरह भारत सरकार द्वारा 1 जनवरी 2017 से लागू मातृत्व लाभ योजना (प्रसूति सहायता कार्यक्रम) भी देश की असंगठित क्षेत्र के 70 प्रतिशत महिलाओं को मातृत्व हक से वंचित करती है. इसका परिणाम यह हो रहा है कि हाशिए पर रहने वाली महिलाएं गर्भावस्था के दौरान आराम नहीं कर पाती हैं, उन्हें मजदूरी करना होती है, उन्हें सीमित पोषण मिलता है और काम में जुटे होने के कारण वे स्वास्थ्य जांच भी नहीं करवा पाती हैं; इन कारणों से गर्भस्थ शिशु का पूरा विकास नहीं हो पाता है. यही कारण है कि 35.9 प्रतिशत शिशुओं की मृत्यु का कारण उनका समय से पहले जन्म लेना और जन्म के समय उनका वज़न कम होना है. जब उन्हें माँ का दूध नहीं मिलता है, तो वे जल्दी संक्रमण के शिकार होते हैं. भारत के महापंजीयक के मुताबिक संक्रमण (निमोनिया-16.9 प्रतिशत और डायरिया-6.7 प्रतिशत) के कारण 23.6 प्रतिशत बच्चों की मृत्यु होती है. इस पृष्ठभूमि में भी भारत सरकार ने मातृत्व हक कार्यक्रम को केवल एक नकद हस्तांतरण कार्यक्रम के रूप में जाना-समझा है, जो उनके खजाने को कम कर रहा है. जोड़-तोड़ करके वर्ष 2017 के लिए 16.4 हज़ार करोड़ रुपए की वास्तविक जरूरत की तुलना में इसके लिए केवल 2,700 करोड़ रुपए का आवंटन किया गया.

स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति पर एक नजर

नवजात शिशुओं और बाल मृत्यु की चुनौती से निपटने के लिए स्वास्थ्य सेवाओं की बहुत जरूरत होती है. भारत में भौगोलिक-सांस्कृतिक विविधताओं के मद्देनज़र लोक स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए सरकार की भूमिका केन्द्रीय होती है. भारत के ग्रामीण इलाकों में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति को सामने लाने वाली सरकारी रिपोर्ट – 'रूरल हेल्थ स्टेटिस्टिक्स-2016' के मुताबिक भारत को अभी स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्रतिबद्धता दिखाने की जरूरत है.

शल्य चिकित्सक - यह रिपोर्ट बताती है कि भारत में सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों पर 5510 शल्य चिकित्सकों (सर्जन) की जरूरत है, किन्तु केवल 884 (16%) सर्जन ही नियुक्त हैं. शेष पद खाली हैं. मध्यप्रदेश में 334 की जरूरत है, किन्तु 83 पद ही भरे हुए हैं. इसी तरह महाराष्ट्र में 360 पदों में से 87, उत्तरप्रदेश में 773 पदों में से 117, गुजरात में 322 में से 41, झारखंड में 188 में से 36, राजस्थान में 571 में से 127 पद ही भरे हुए हैं.

स्त्री रोग विशेषज्ञ – भारत में 5,510 स्त्री रोग विशेषज्ञों की जरूरत के सन्दर्भ में केवल 1,292 पद (23.55) ही भरे हुए हैं. मध्यप्रदेश में 334 की जगह पर 79, उत्तरप्रदेश में 773 पदों में से 115, महाराष्ट्र में 360 पर 119, गुजरात में 322 पर 51, झारखंड में 188 पदों पर 39 और राजस्थान में 571 पदों में से 87 ही भरे हुए हैं.

बच्चों के चिकित्सक – भारत के स्तर पर 5,510 बाल चिकित्सकों के केवल 1,758 (325) पद ही भरे हुए हैं. मध्यप्रदेश में 334 पदों पर 76, उत्तरप्रदेश में 773 पदों की जगह पर 154, महाराष्ट्र में 360 पदों में से 250, गुजरात में 322 पदों में से 44, झारखंड में 188 में से 15, राजस्थान में 571 पदों में से 94 पद ही भरे हुए हैं.

उपस्वास्थ्य केन्द्रों की स्थिति – तत्काल जरूरी स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध करवाने में उपस्वास्थ्य केन्द्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है. भारत के स्तर पर 1,55,069 उपस्वास्थ्य केंद्र हैं. इनमें से 44,118 केन्द्रों को पानी (28.5%) और 39,761 (26%) केन्द्रों को बिजली उपलब्ध नहीं हुई है. मध्यप्रदेश में 9,192 उपस्वास्थ्य केन्द्रों में से 2,922 पर पानी और 1,885 पर बिजली उपलब्ध नहीं है.

वक्त से पहले पैदा होने से, असमय खत्म होती है जिन्दगी;

हर रोज समय से पूर्व जन्म लेने वाले 948 शिशुओं की मृत्यु

31 मार्च 2016 को भारत के स्वास्थ्य और परिवार कल्याण राज्यमंत्री ने बताया कि वर्ष 2015 में भारत में 33.4 लाख बच्चों ने समय से पूर्व जन्म लिया. पूरी दुनिया में समय से पूर्व जन्म लेने वाले बच्चों में से 22 प्रतिशत भारत में होते हैं. उनका कहना था कि इसके राज्यवार अनुमान उपलब्ध नहीं हैं". विश्व स्वास्थ्य संगठन ने बताया है कि दुनिया में लगभग 1.5 करोड़ बच्चे समय से पहले जन्म लेते हैं, इनमें से सबसे ज्यादा भारत में होते हैं. यह एक चुनौती इसलिए है क्योंकि गर्भ में पूरी तरह से विकसित होने के लिए 40 सप्ताह की जरूरत होती है. समय से पहले प्रसव बच्चे का पूरा विकास नहीं होने देता है.

बच्चों के जीवन के अधिकार को संरक्षित करने के नज़रिए से महत्वपूर्ण है कि बच्चे के जीवन की गणना कहाँ से शुरू की जाती है? बाल अधिकारों की व्यापक बहस में (कुछ अकादमिक स्तरों पर हो रही कोशिशों को छोड़ कर) बच्चों के अधिकार का दायरा तब तय किया जाता है, जिस वक्त वह जन्म लेता है. हम यह सच भूल जाते हैं कि बच्चे के जीवन का अधिकार भ्रूण अवस्था से शुरू हो जाता है और उसके जीवन को स्त्रियों के जीवन के मौलिक अधिकारों से जुदा करके देखना एक ईमानदार और प्रभावी तरीका नहीं है.

भारत के महापंजीयक (जनगणना विभाग) की रिपोर्ट – *मृत्यु के कारण की सांख्यिकी रिपोर्ट 2010-13* के मुताबिक 48.1 प्रतिशत नवजात शिशुओं की मृत्यु का सबसे बड़ा संयुक्त कारण उनका समय से पहले जन्म लेना और जन्म के समय कम वज़न होता है.

समय से पूर्व जन्म का गहरा असर

नवजात शिशु मृत्यु दर और वर्ष में होने वाले जीवित जन्मों के तथ्यों के आधार पर आंकलन करने से पता चलता है कि भारत में वर्ष 2008 से 2015 की अवधि में 62.40 लाख बच्चों की जन्म के पहले 28 दिनों की भीतर ही मौत हो गई. जर्नल आफ पेरिनेटोलाजी (दिसंबर 2016) के मुताबिक भारत

में 43.6 प्रतिशत नवजात शिशुओं (जन्म के 28 दिनों में होने वाली) की मृत्यु कारण समय से पूर्व प्रसव से बच्चे का जन्म और उससे जुड़ी जटिलताएं हैं. इसका मतलब यह है कि आठ सालों में 26.30 लाख नवजात शिशुओं की मृत्यु समय पूर्व जन्म लेने के कारण हुई, यानी 948 हर रोज.

विश्व स्वास्थ्य संगठन मानता है कि शिशु का समय से पूर्व जन्म व मृत्यु और जीवन में किसी न किसी किस्म की विकलांगता का बड़ा कारण है. संगठन के मुताबिक जिन बच्चों का जन्म 36 सप्ताह या 259 दिन की गर्भावस्था अवधि में होता है, उसे समय पूर्व जन्म (प्री-मेच्यौर बर्थ) माना जाता है. भारत में अध्ययनों के मुताबिक लगभग 2.6 करोड़ बच्चों का जन्म होता है, जिनमें से 35 लाख बच्चे यानी हर सौ जीवित जन्मों में से 13 बच्चे समय से पूर्व जन्म लेते हैं.

सामान्यतः गर्भावस्था की अवधि 40 सप्ताह होती है, जिसमें भ्रूण गर्भ में पूरी तरह से विकसित हो जाता है. 36 सप्ताह की गर्भावस्था से जन्म लेने वाले बच्चे, जो जीवित रह जाते हैं, वे सेरेब्रल पाल्सी, सीखने की क्षमता में कमी, संवेदी तंत्र में कमी और श्वांस तंत्र की बीमारियों से जूझते हैं. यानी इस तरह की स्थितियों का सामाजिक, आर्थिक, भौतिक और मनौवैज्ञानिक असर व्यक्ति और परिवार पर जीवन भर पड़ता रहता है.

समय से पूर्व जन्म के कारण

कारण एक – स्वाभाविक रूप से प्रसव पीड़ा के कारण झिल्ली के समय से पहले फट जाने के कारण शिशु का जन्म हो जाता है. स्वाभाविक रूप से आधे से ज्यादा मामलों में यह पता ही नहीं चला पाता है कि ऐसा क्यों हुआ?

कारण दो - प्रसव कराने वाले व्यक्ति और जिसका प्रसव होना है, उनके द्वारा किन्ही किन्हीं परिस्थितियों में समय से पहले प्रसव कराने के निर्णय के कारण समय से पूर्व प्रसव होना. इसमें गर्भवती महिला की स्थिति के मुताबिक इसे जरूरी भी माना जा सकता है और कई मामलों में चिकित्सकीय जरूरत न होने पर भी यह परिवार या माँ की मांग होती है कि शल्य चिकित्सा के जरिए समय से पहले बच्चे का जन्म करा दिया जाए. लगभग 45-50 प्रतिशत ऐसे जन्म स्वाभाविक किन्तु अज्ञात कारणों से अंजाम दिए जाते हैं, झिल्ली समय से पहले फट जाने के कारण 30 प्रतिशत जन्म करवाए जाते हैं, जबकि लगभग 20 प्रतिशत मामलों में गर्भवती महिला या परिवार द्वारा इस विकल्प को चुना जाता है.

रेपिड सर्वे आन चिल्ड्रन (महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, 2013-14) के अनुसार भारत में 46 प्रतिशत महिलाओं की प्रसव के बाद जांच ही नहीं होती है. इसी तरह 40 प्रतिशत नवजात शिशुओं की भी जांच नहीं हुई. जन्म के 24 घंटों के भीतर भारत में 68.6 प्रतिशत बच्चों का वज़न दर्ज किया गया. यह स्तर उत्तरप्रदेश में 28.2 प्रतिशत, बिहार में 46 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 61 प्रतिशत, राजस्थान में 56.8 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 88.4 प्रतिशत और केरल में 98.2 प्रतिशत रहा.

समय से पूर्व जन्म लेने वाले बच्चों के जीवन के लिए जन्म के तत्काल बाद स्तनपान (कोलेस्ट्रम फीडिंग) की शुरुआत जरूरी होती है. भारत में इसकी स्थिति भी अच्छी नहीं है क्योंकि केवल 41.6 प्रतिशत बच्चों को ही जन्म से स्तनपान हासिल हुआ (एनऍफ़एचएस-4). बिहार में यह स्तर 34.9 प्रतिशत, छत्तीसगढ़ में 46.1 प्रतिशत, गुजरात में 50 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 34.5 प्रतिशत, उत्तरप्रदेश में 25.1 प्रतिशत रहा.

प्रदूषण भी है एक बड़ा कारण

हवा/वातावरण में असंख्य सूक्ष्म कण होते है. इनमें से एक को पीएम 2.5 कहा जाता है, यानी ऐसे कण जिनका व्यास 2.5 माइक्रोमीटर से कम होता है. इन कणों की मात्रा बहुत बढ़ रही है. इसमें कार्बन, नाइट्रेट, सल्फर और क्रिस्टल के कण होते हैं. ये कार-ट्रक-बड़े वाहनों के धुंए, थर्मल उर्जा संयंत्रों, कूड़ा जलाने, धातुओं के प्रसंस्करण से वातावरण में आते हैं. इनका आकार इतना छोटा होता है कि हमारी सांस के जरिये ये शरीर में चले जाते हैं. अब भारत के शहरों में पीएम 2.5 उसकी सामान्य मात्रा से 3 गुने से ज्यादा हो गया है.

यूनिवर्सिटी आफ यार्क के द स्टाकहोम एन्वायर्नमेंट इंस्टीटयूट द्वारा किए गए अध्ययन से यह चौकाने वाला तथ्य सामने आया है कि पर्यावरण प्रदूषण भी समय से पूर्व जन्म का बड़ा कारण है. जो गर्भवती महिलाएं पीएम 2.5 की अधिकता वाली हवा में सांस ले रही हैं, उसके कारण अपरिपक्व प्रसव हो रहे हैं. भारत में दुनिया में सबसे ज्यादा 10 लाख समय पूर्व प्रसव इसके कारण हो रहे हैं.

जोखिम के कारक

कुछ महत्वपूर्ण बिंदु हैं जो बच्चे के समय पूर्व जन्म का कारण बनते हैं; मसलन –

* असंतुलित पोषण की स्थिति; मसलन अल्प पोषण, मोटापा या सूक्ष्म पोषण तत्वों की कमी.

* जीवन शैली; मसलन महिला का धूम्रपान या मदिरापान करना या किसी अन्य तरह की नशीली दवाओं का सेवन करना,
* तनाव या नैराश्य या अवसाद
* बहुत ज्यादा शारीरिक श्रम करना
* बहुत देर तक लगातार खड़े रहना
* कम उम्र में गर्भावस्था होने के कारण, क्योंकि किशोरी बच्चियों का शरीर गर्भ में शिशु की संभाल नहीं कर पाता है.
* जिनके साथ पहले भी समय से पहले प्रसव की घटना हो चुकी हो.
* गर्भ में एक से ज्यादा बच्चे हों.
* किसी तरह का संक्रमण हो.
* बीमारी, जैसे डायबिटीज़ या उच्च रक्तचाप हो.
* अनुवांशिक कारण.

समय से पहले जन्म लिए बच्चे बचाए जा सकते हैं

समय से पूर्व जन्म लेने वाले वाले लगभग 65 प्रतिशत बच्चों को बचाया जा सकता है. इसके लिए समुदाय, परिवार और स्थानीय स्वास्थ्य केन्द्रों को कौशल-समझ और सजगता से परिपक्व बनाये जाने की जरूरत है. हमें यह जानना चाहिए कि इस तरह के मामलों में गर्भवती महिलाओं को सहज रूप से प्रसव करवाने के लिए विशेष दवाओं और सही तकनीक से की गई प्रसव पश्चात देखभाल की जरूरत होती है. शायद हम सब जानते हैं कि नवजात शिशुओं, खास तौर पर समय से पहले होने वाले प्रसव से जन्म लेने वाले बच्चों की देखभाल के लिए कंगारू देखभाल तकनीक (जैसे कंगारू अपने बच्चे को अपने शरीर में बनी थैली में रखती है) की जरूरत होती है, जिसमें शिशु को माँ के शरीर से सटा कर/चिपका कर रखा जाता है, ताकि उसे गर्मी का अहसास हो, तापमान में असामान्य बदलाव के असर से बच्चे की सुरक्षा हो और वह स्वयं को सुरक्षित महसूस करे. उसे माँ का दूध लगातार मिलना और उसकी किसी भी संक्रमण से सुरक्षा बहुत बड़ी जरूरत होती है. अब आप सोचिये इस तरह की स्थिति में क्या हमें बहुत विशेषज्ञ व्यवस्था या पांच सितारा स्वास्थ्य सेवाओं की जरूरत होती है? नहीं; लेकिन फिर भी देश में समय से पूर्व जन्में नवजात शिशुओं की चिकित्सकीय देखभाल सबसे मंहंगी

सेवाओं में से एक है. भारत की मौजूदा लोक स्वास्थ्य व्यवस्था में इस तरह की सेवाओं को मज़बूत करने की बहुत कोशिशें नहीं हुई है. बहरहाल सितम्बर 2014 में भारत का नवजात शिशु एक्शन प्लान जारी कर दिया गया है.

भारतीय सन्दर्भ में हमें यह जानना जरूरी है कि दो तिहाई महिलाओं को आज भी किसी तरह के मातृत्व सहयोग की व्यवस्था उपलब्ध नहीं है. राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य की निगरानी के लिए एक कार्ड (एमसीएच कार्ड) उपलब्ध करवाता है. इसमें एक सन्देश होता है कि गर्भावस्था के दौरान महिलाओं को दिन भर में थोड़े-थोड़े अंतराल पर कुछ खाते रहना चाहिए और दिन में दो घंटे आराम जरूर करना चाहिए, परन्तु आर्थिक गरीबी के कारण यह संभव नहीं हो पा रहा है. आज की स्थिति में सभी महिलाओं को मातृत्व हक़ न मिलने (यानी गर्भावस्था में आराम के लिए हर महिला को वेतन/आर्थिक सहायता से साथ अवकाश, सम्पूर्ण स्वास्थ्य सेवाएँ, परामर्श, टीकाकरण और पोषण) के कारण महिलाओं और गर्भस्थ शिशु का जीवन सुरक्षित नहीं है.

टूटा-फूटा 1000 दिन का चक्र

जन्म ले लेना जिंदगी मिलने की कोई शर्त या सुनिश्चितता नहीं होती है. जन्म ले लेना और जन्म लेकर जिंदगी का रेखाचित्र खींच पाना, ये सबसे बड़ी चुनौतियां भी हैं. अपना देश, जिसके बारे में बड़े मंचों से बड़े लोग अक्सर कहते हैं कि भारत तो विश्व गुरु है, महान है और शक्तिशाली है. जरूर होगा. अपन उनकी बात को खारिज क्यों करें? खुद के हाथों से समझबूझ के साथ रचा गया भ्रम कौन तोड़ सकता है भला. अपन तो कुछ तर्क और कुछ तथ्य उजागर कर सकते हैं. तथ्य यह है कि पूरी दुनिया में जन्म लेने के 28 दिनों के भीतर मर जाने वाले बच्चों की सबसे बड़ी संख्या भारत से होती है. दुनिया में अपना पहला जन्मदिन मनाए बिना मर जाने वाले बच्चों की संख्या भी भारत से ही होती है.

यदि सच्ची बात कही जाए तो समाज की सबसे गंभीर समस्याएं गरीबी, गैर-बराबरी, भेदभाव और हिंसा को दूर करने के लिए महिलाओं और बच्चों का स्वास्थ्य और उनके जीवन की सुरक्षा सुनिश्चित करना सबसे बड़ा लक्ष्य होना चाहिए. चमचमाती सड़कें सफर को स्वर्णिम नहीं बनाती हैं, 500 किलोमीटर की रफ़्तार से भागती रेल जीवन के लक्ष्य तक जल्दी नहीं पंहुचाती है, बहुत महंगे कपड़े नंगापन नहीं छिपाते हैं, बहुत कीमती सौंदर्य प्रसाधन चरित्र की गंदगी पर कोई आवरण नहीं डाल पाते हैं;

सच तो यह है कि अपना समाज जितने ज्यादा आवरण ओढ़ रहा है, उसके भीतर की दुर्गन्ध उतनी ही तेज गति से उभर कर बाहर आ रही है. विकास का कितना ही दावा कर लें, भारत में दुनिया की सबसे ज्यादा मातृत्व और बाल मौतें होती हैं भारत में वर्ष 2008 से 2015 की बीच के आठ सालों में भारत में 1.13 करोड़ बच्चे अपना पांचवां जन्मदिन नहीं मना पाए. सरकारी और आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धांतों में इसे पांच साल तक के बच्चों की मृत्यु कहा जाता है.

इस पर भी बड़ा संकट यह कि इनमें से 62.40 लाख बच्चों की मौत जन्म लेने के पहले 28 दिनों में ही हो गई. इसे नवजात शिशु मृत्यु कहा जाता है. जन्म लेने के बाद के पहले 28 दिन जीवन के सबसे संवेदनशील दिन होते हैं. बचपन की यह उम्र मृत्यु की आशंकाओं से

भरी होती है. एक महीने से पांच साल की उम्र में बच्चों की मृत्यु का जितना जोखिम होता है, उससे 30 गुना ज्यादा जोखिम इन 28 दिनों में होता है. (जर्नल आफ पेरिनेटोलाजी, 2016)

कुछ अहम् बिंदु यह हैं कि पांच साल तक की उम्र में कुल जितनी बाल मौतें होती हैं, उनमें से लगभग 85 प्रतिशत पहले साल में हो जाती हैं. एक साल तक की उम्र में जितनी मौतें होती हैं, उनमें से 67 प्रतिशत पहले 28 दिनों में होती हैं. जन्म के बाद जितने नवजात बच्चों की मौतें होती हैं, उनमें से 74 प्रतिशत की मृत्यु पहले सात दिनों में हो जाती हैं. जन्म के बाद चार हफ्ते यानी 28 दिनों में जितने बच्चों की मौतें होती हैं, उनमें से 37 प्रतिशत मौतें पहले एक दिन यानी 24 घंटों में हो जाती हैं.

यह एक गंभीर पहलू है, जो सभ्य राजनीति और सामाजिक नीति के केंद्र में होना चाहिए. हमारे विकास को आर्थिक लेन-देन और बढ़ते विलासी उपभोग से नहीं मापा जा सकता है. वास्तव में इस परिदृश्य में हमें अपनी विकास की परिभाषा, नीति और नज़रिए को नैतिकता के नज़रिए से जांचने की जरूरत है.

वर्ष 2008 से 2015 के बीच मध्यप्रदेश में 6.18 लाख बच्चों की मृत्यु जन्म के पहले 28 दिनों में ही हो गई. वर्ष 2008 में 93.7 हज़ार बच्चों की मृत्यु हुई थी, जो वर्ष 2015 में घटकर 64.5 हज़ार तक जरूर आई है, किन्तु राज्य में नवजात शिशु स्वास्थ्य और मातृत्व स्वास्थ्य के लिए राज्य की तरफ से बहुत तत्परता दिखाई नहीं देती है.

इस अवधि में उत्तरप्रदेश में 16.84 लाख नवजात शिशुओं की मृत्यु हुई. आठ सालों में नवजात शिशु मृत्यु की संख्या 2.52 लाख से घट कर 1.72 लाख तक आई है. राजस्थान में इन आठ सालों में 5.12 लाख, बिहार में 6.54 लाख, झारखंड में 1.70 लाख, महाराष्ट्र में 2.92 लाख, आन्ध्र प्रदेश में 3.35 लाख, गुजरात में 2.95 लाख नवजात शिशुओं की मृत्यु हुई.

देश के चार राज्यों (उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार और मध्यप्रदेश) में देश की कुल नवजात मौतों की संख्या में से 56 प्रतिशत मौतें दर्ज होती हैं.

छोटे बच्चों की मृत्यु के बड़े कारण

व्यवस्थित वैश्विक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय अध्ययनों से नवजात शिशु मृत्यु दर इतनी ज्यादा होने के चार महत्वपूर्ण कारण पता चले हैं - समय से पहले जन्म लेने के कारण होने वाली जटिलताएं (43.7 प्रतिशत), विलंबित और जटिल प्रसव के कारण (19.2 प्रतिशत), निमोनिया, सेप्सिस और अतिसार यानी संक्रमण के कारण (20.8 प्रतिशत), जन्मजात असामान्यताओं के कारण (8.1 प्रतिशत).

भारत के महापंजीयक की नमूना पंजीयन प्रणाली (एसआरएस) के मुताबिक भारत में शिशुओं की मौत का कारण समय से पूर्व जन्म लेना और जन्म के समय बच्चों का वज़न कम होना (35.9 प्रतिशत), निमोनिया (16.9 प्रतिशत), जन्म एस्फिक्सिया एवं जन्म आघात (9.9 प्रतिशत), अन्य गैर संचारी बीमारियाँ (7.9 प्रतिशत), डायरिया रोग (6.7 प्रतिशत), जन्मजात विसंगतियाँ (4.6 प्रतिशत) और संक्रमण (4.2 प्रतिशत) हैं. महिलाओं में खून की कमी के कारण प्रसव के समय का रक्तस्त्राव मातृत्व मृत्यु का कारण बनता है

कम उम्र में विवाह, गर्भावस्था के दौरान सही भोजन की कमी और भेदभाव, मानसिक-शारीरिक-भावनात्मक अस्थिरता, विश्राम और जरूरी स्वास्थ्य सेवाएं न मिलने, सुरक्षित प्रसव न होने और प्रसव के बाद बच्चे को माँ का दूध न मिलने की कड़ियाँ आपस में मिलकर मातृ-शिशु मृत्यु (खास तौर पर नवजात शिशु) का आधार तैयार करती हैं. वास्तविकता यह है कि ऐसी स्थिति में 1000 दिनों के सिद्धांत (नौ माह की गर्भावस्था और बच्चे के दो साल की उम्र, जब तक वह स्तनपान कर रहा है) को व्यापक स्तर पर लागू करने की जरूरत है. जब इस अवधि में महिला और बच्चे की उपेक्षा की जाएगी तो स्वाभाविक है कि मातृत्व मृत्यु, नवजात शिशु और बाल मृत्यु का स्तर ऊँचा ही होगा.

कम उम्र में शादी यानी – मृत्यु की तैयारी का पहला कदम

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (चार) के अध्ययन यह साबित करते हैं कि हम 1000 दिनों में हर स्तर उपेक्षा, भ्रष्टाचार, नासमझी और अमानवीय गैर-जवाबदेयता बिखरी हुई है.

भारत में आधिकारिक अध्ययन से पता चलता है कि 26.8 प्रतिशत महिलाओं की शादी 18 साल से कम उम्र में हो गई. बिहार में 39.1 प्रतिशत, आँध्रप्रदेश में 32.7 प्रतिशत, असम में 32.6 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 30 प्रतिशत, राजस्थान में 35.4 प्रतिशत, पश्चिम बंगाल में 40.7 प्रतिशत और त्रिपुरा में 32.2 प्रतिशत लड़कियों की शादी 18 साल से कम उम्र में हो जा रही है. बहरहाल यह बात अलग है कि बाल विवाह प्रतिबन्ध का क़ानून होने के बाद भी उसे लागू करने में राज्य सरकारें कोई प्रतिबद्धता नहीं दिखाती हैं.

कम उम्र में गर्भावस्था

एक निश्चित उम्र से पहले गर्भवती होने के कारण महिला और गर्भस्थ शिशु, दोनों के जीवन को ही खतरा होता है.

क्या इस उम्र तक उनका पूरा शारीरिक-मानसिक और भावनात्मक विकास हो पाया? जब बाल विकास होता है, तो लड़कियां जल्दी गर्भवती भी होती हैं. भारत में 7.9 प्रतिशत महिलायें 15 से 19 साल की उम्र में ही गर्भवती हुईं. यह उम्र तो गर्भवस्था की आदर्श उम्र नहीं मानी जाती है. 19 साल की उम्र से पहले ही पश्चिम बंगाल में 18.3 प्रतिशत, त्रिपुरा में 18.8 प्रतिशत, तेलंगाना में 10.6 प्रतिशत, असम में 13.6 प्रतिशत, आँध्रप्रदेश में 11.8 प्रतिशत बिहार में 12.2 प्रतिशत, झारखंड में 12 प्रतिशत. महाराष्ट्र में 8.3 प्रतिशत लड़कियां गर्भावस्था में प्रवेश कर चुकी थी. इस पर भारत सरकार इतनी कठोर है कि उसने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून में केवल उन्हीं महिलाओं को मातृत्व सहयोग योजना का लाभ देना तय किया है, जिनकी उम्र गर्भावस्था के समय 19 साल होगी. बहरहाल यह भी जान लीजिए कि सर्वोच्च न्यायालय में भारत सरकार ने कहा है कि 15 से 18 साल की उम्र में विवाह संबंधों में बनाए गए यौन संबंधों को वैवाहिक बलात्कार नहीं माना जाता है. क्या यह नीति बनाने वालों का अनैतिक, विरोधाभासी और महिला विरोधी नजरिया नहीं है?

गर्भवती की देखरेख; निहायत गैर जिम्मेदार रवैया

भारत में हर साल लगभग 2.58 करोड़ गर्भवती महिलायें पंजीकृत होती हैं. इन्हें इस अवस्था में चार प्रसव पूर्व जांच सेवाएं दिए जाने की व्यवस्था है. इसमें किसी तरह की लापरवाही और भेदभाव की उम्मीद नहीं की जाती है, पर भारत में व्यवस्था सबसे ज्यादा उम्मीदें तोड़ती है. देश में केवल 51.2 प्रतिशत यानी लगभग आधी गर्भवती महिलाओं को ही चार प्रसव पूर्व जांचे मिल पाती हैं. यानी शेष महिलाओं का

वज़न, रक्तचाप, उनकी जटिलताएं, खून की कमी की जांच ही नहीं होती है. इसके कारण प्रसव के समय जटिलताएं ज्यादा गंभीर रूप में सामने आती हैं.

मध्यप्रदेश में 35.7 प्रतिशत, उत्तरप्रदेश में 26.4 प्रतिशत, उत्तराखंड में 30.9 प्रतिशत, राजस्थान में 38.5 प्रतिशत, झारखंड में 30.3 प्रतिशत, बिहार में 14.4 प्रतिशत महिलाओं की ही चार प्रसव पूर्व जांचें होती हैं. यानी जटिलताओं को समय पर नहीं पकड़ा जाता है. इस कमजोरी के कारण समय से पहले होने वाले (40 सप्ताह से पहले) प्रसव की स्थिति में महिलाओं और शिशु की मृत्यु की सबसे ज्यादा आशंका होती है.

बेहद सीमित मातृत्व सहयोग

अगस्त 2017 के पहले हफ्ते में यूनिसेफ-विश्व स्वास्थ्य संगठन ने ग्लोबल ब्रेस्टफीडिंग स्कोरकार्ड जारी किया. इसमें बताया है कि भारत में हर साल 1 लाख बच्चे इसलिए मर जाते हैं क्योंकि उन्हें माँ का दूध नहीं मिलता है. बच्चों को पर्याप्त स्तनपान नहीं मिल पाने के कारण भारत की अर्थव्यवस्था को 14 बिलियन डालर यानी लगभग 9100 करोड़ रुपए का नुकसान होता है. अतः जरूरी था कि मातृत्व सहयोग/अधिकार योजना को पात्रता की शर्तों से मुक्त रखा जाता.

जब महिलाओं को विवाह और प्रजनन के बारे में निर्णय लेने का अधिकार नहीं है, तो कुछ शर्तें स्वाभाविक रूप से महिला विरोधी हो जाती है. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून के तहत मातृत्व सहयोग कार्यक्रम का लाभ उन्हीं महिलाओं को मिल पाएगा, जिनकी उम्र गर्भावस्था के समय 19 साल है. यह लाभ केवल पहले जीवित जन्म तक मिलेगा. और इसे संस्थागत प्रसव से भी जोड़ा गया है. यदि जनगणना-2011 के आंकड़ों का विश्लेषण किया जाए, तो पता चलता है कि भारत में एक जीवित जन्म शिशुओं वाली महिलाओं का प्रतिशत 17.6 है, जबकि दो जीवित जन्म शिशुओं वाली महिलायें 28.1 प्रतिशत हैं, तीन जीवित शिशु को जन्म देने वाली महिलायें 20.8 प्रतिशत हैं. 33.5 प्रतिशत महिलाओं ने चार या इससे ज्यादा जीवित शिशुओं को जन्म दिया है. इससे स्पष्ट हो जाता है कि एक जीवित बच्चे के प्रसव के लिए ही लाभ दिए जाने की शर्त से केवल 30.70 प्रतिशत प्रसवों की स्थिति में ही मातृत्व सहयोग योजना का लाभ महिलाओं को मिल पाएगा.

गर्भावस्था के दौरान पोषण आहार

भारत में दुनिया का सबसे बड़ा एकीकृत बाल विकास कार्यक्रम संचालित होता है. इसका मकसद ही कुपोषण और मातृत्व-बाल मृत्यु दर को कम करना है. गर्भावस्था के दौरान आंगनबाड़ी समुदाय के बीच एक महत्वपूर्ण केंद्र होता है, किन्तु धीमे-धीमे इसे कमज़ोर करने की कोशिशें जारी हैं. गुणवत्ता की कमी, निगरानी का अभाव, अनुशासन और भेदभाव के कारण इसकी सामाजिक स्वीकार्यता स्थापित नहीं होने दी गई. वर्ष 2013-14 में भारत सरकार ने यूनिसेफ के सहयोग से रेपिड सर्वे आन चिल्ड्रन नामक अध्ययन किया. उससे पता चला कि इन कार्यक्रम में केवल 45.7 प्रतिशत गर्भवती महिलायें और 47.8 प्रतिशतधात्री माताएं ही पोषण आहार पाती हैं. इसी तरह 3 साल से कम उम्र के 49.2 प्रतिशत और 3 से 6 साल तक के 44.2 प्रतिशत बच्चे ही पूरक पोषण आहार पाते हैं. गर्भवती महिलाओं की विशेष जरूरतों को देखते हुए इस कार्यक्रम का कमज़ोर होना अच्छे लक्षण नहीं हैं.

खून की कमी

रक्ताल्पता यानी खून की कमी के कारण भी मातृत्व मृत्यु और शिशु मृत्यु होती है भारत में 50.3 प्रतिशत गर्भवती महिलाओं में खून की कमी है. मध्यप्रदेश में 54.6 प्रतिशत, उत्तरप्रदेश में 51 प्रतिशत, पश्चिम बंगाल में 53.6 प्रतिशत, झारखंड में 62.6 प्रतिशत, आँध्रप्रदेश में 52.9 प्रतिशत और बिहार में 58.3 प्रतिशत गर्भवती महिलायें खून की कमी की शिकार हैं.

आईएफए की गोलियाँ

इसका मतलब है कि उन्हें आयरन फोलिक एसिड की गोलियाँ मिलना चाहिए. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (चार) के मुताबिक देश में 30.3 प्रतिशत गर्भवती महिलायें ही आईएफए की गोलियों का उपयोग करती हैं. जिन राज्यों में सबसे ज्यादा नवजात शिशु मृत्यु दर दर्ज होती हैं, वहां आईएफए गोलियों का उपयोग निम्नतम स्तर पर है. बिहार में उपयोग का स्तर केवल 9.7 प्रतिशत, झारखंड में 15.3 प्रतिशत, उत्तरप्रदेश में 12.9 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 23.6 प्रतिशत और राजस्थान में 17.3 प्रतिशत है.

प्रसव का स्थान

भारत में सुरक्षित मातृत्व और शिशु मृत्यु दर को कम करने के लिए संस्थागत प्रसव पर बहुत जोर दिया गया है. दस सालों में यहां संस्थागत प्रसव का स्तर बढ़कर दो गुना हो गया है. तीसरे राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के समय 38.7 प्रतिशत प्रसव संस्थागत थे, जो चौथे सर्वेक्षण के समय बढ़ कर 78.9 प्रतिशत हो गए. बिहार में संस्थागत प्रसव 19.9 प्रतिशत से बढ़कर 63.8 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 64.7 प्रतिशत से बढ़कर 94.3 प्रतिशत, उत्तरप्रदेश में 20.6 प्रतिशत से बढ़कर 67.8 प्रतिशत, राजस्थान में 29.6 प्रतिशत से बढ़कर 84 प्रतिशत हो गए.

वस्तुतः केवल संस्थागत प्रसव ही सुरक्षित प्रसव की अवधारणा नहीं है. यह उसका एक हिस्सा भर है. इस पर भी हमें सवाल पूछना होगा कि वास्तव में हमारे संस्थानों की स्थिति क्या है? जरा देखिये कि – भारत में 5510 स्त्री रोग विशेषज्ञों के पदों की जरूरत के सन्दर्भ में केवल 1292 पद (23.55) ही भरे हुए हैं. मध्यप्रदेश में 334 की जगह पर 79, उत्तरप्रदेश में 773 पदों में से 115, महाराष्ट्र में 360 पर 119, गुजरात में 322 पर 51, झारखंड में 188 पदों पर 39 और राजस्थान में 571 पदों में से 87 ही भरे हुए हैं. इसी तरह तत्काल जरूरी स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध करवाने में उपस्वास्थ्य केन्द्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है. भारत के स्तर पर 155069 उपस्वास्थ्य केंद्र हैं. इनमें से 44118 केन्द्रों को पानी (28.5%) और 39761 (26%) केन्द्रों को बिजली नसीब नहीं हुई है.

मध्यप्रदेश में 9192 उपस्वास्थ्य केन्द्रों में से 2922 पर पानी और 1885 पर बिजली उपलब्ध नहीं है.

महाराष्ट्र में 10850 उपस्वास्थ्य केन्द्रों में से 3882 पर पानी और 2896 पर बिजली उपलब्ध नहीं है. इसी तरह राजस्थान में 14408 केन्द्रों में से 5131 पर पानी और 5362 पर बिजली उपलब्ध नहीं है. उत्तरप्रदेश में 20521 केन्द्रों में से 6660 को पानी और 7377 को बिजली उपलब्ध नहीं है. बिहार में 9729 उपस्वास्थ्य केन्द्रों में से 4875 पर पानी और 6364 पर बिजली उपलब्ध नहीं है. झारखंड में 3953 उपस्वास्थ्य केन्द्रों में से 2560 पर पानी और 2761 पर बिजली उपलब्ध नहीं है.

सरकार संस्थागत प्रसव को बढ़ावा देती है. पहले सरकारी संस्थानों में व्यवस्थाएं और फिर सेवाएं कमज़ोर करती है. और फिर लोग निजी अस्पतालों में महंगी सेवाएं लेने के लिए मजबूर हो जाते हैं. निजी अस्पतालों में होने वाले 41 प्रतिशत प्रसव शल्य चिकित्सा से करवाए जा रहे हैं.

जन्म के बाद पहला दूध

यह जरूरी है कि जन्म के तत्काल बाद और एक घंटे के भीतर नवजात बच्चे को माँ का पहला गाढ़ा पीला दूध मिल जाए. एनएफएचएस से पता चलता है कि भारत में केवल 41.6 प्रतिशत बच्चों को ही जन्म के एक घंटे के भीतर माँ का पहला दूध मिल रहा है. यदि ऐसा है तो बच्चे संक्रमण से मुक्त नहीं हो रहे हैं और उन्हें जिन्दा रहने की खुराक ही नहीं मिल रही है. उत्तरप्रदेश में 25.2 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 34.5 प्रतिशत, पंजाब में 30.7 प्रतिशत, राजस्थान में 28.4 प्रतिशत, बिहार में 34.9 प्रतिशत, दिल्ली में 29.1 प्रतिशत, गुजरात में 32.6 प्रतिशत नवजात शिशुओं को ही तत्काल स्तनपान कराया जा रहा है. इससे यह भी साबित होता है कि संस्थागत प्रसव की रणनीति पूरी तरह से कारगर नहीं है. यदि होती तो देश में कम से कम 79 प्रतिशत शिशुओं को माँ का पहला दूध मिल रहा होता.

छह माह की उम्र तक केवल माँ का दूध

अपन दिन भर में कुछ दर्ज़न भर मौकों पर छह माह की उम्र तक केवल माँ का दूध पिलाए जाने का सन्देश सुनते हैं, पर हकीकत क्या है? भारत में 54.9 प्रतिशत बच्चों को ही पूरी तरह से माँ का दूध मिलता है. उत्तरप्रदेश में 41.6 प्रतिशत, राजस्थान और मध्यप्रदेश में 58.2 प्रतिशत, तमिलनाडु में 48.3 प्रतिशत, बिहार में 53.5 प्रतिशत, दिल्ली में 49.8 प्रतिशत, हरियाणा में 50.3 प्रतिशत बच्चों को ही छह महीने तक केवल माँ का दूध हासिल हुआ. बच्चों के स्वास्थ्य, पोषण और प्रतिरोधक क्षमता के नज़रिए से यह एक महत्वपूर्ण पहलू है.

ऊपरी आहार और स्तनपान

भारत में 6 से 8 महीने की उम्र में केवल 42.7 प्रतिशत बच्चों को ऊपरी आहार मिलना शुरू होता है. यानी लगभग 57 प्रतिशत बच्चे भूख के साथ ही बड़े होते हैं. बिहार में 30.7 प्रतिशत, राजस्थान में 30.1 प्रतिशत, गुजरात में 49.4 प्रतिशत और मध्यप्रदेश में 38.1 प्रतिशत तमिलनाडु में 67.5 प्रतिशत और उत्तरप्रदेश में 32.6 प्रतिशत शिशुओं को इस अवधि में ऊपरी आहार मिलना शुरू हुआ.

दूसरा बिंदु छह महीने की उम्र से बच्चे को अपने विकास के लिए माँ के दूध के अलावा अतिरिक्त आहार की जरूरत होती है. यह आहार उसकी जरूरत और सीमाओं के अनुरूप होना चाहिए; यानी पोषक, पाचक और सुरक्षित.

इस मामले में हमारा समाज और राज्य दुर्दांत अपराधी हैं. देश में छह महीने की उम्र से दो साल की उम्र तक केवल 8.7 प्रतिशत बच्चों को स्तनपान के साथ पूरा जरूरी आहार मिलता है.उत्तरप्रदेश में केवल 5.3 प्रतिशत, राजस्थान में 3.4 प्रतिशत, पंजाब में 5.7 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 5.3 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 6.9 प्रतिशत, झारखंड में 7.2 प्रतिशत, गुजरात में 5.8 प्रतिशत, दिल्ली में 4.8 प्रतिशत और बिहार में 7.3 प्रतिशत बच्चों को ही स्तनपान के साथ पूरा आहार मिलता है.

नवजात शिशु की चिकित्सकीय जांच

जन्म के तत्काल बाद कुछ समय तक नवजात शिशु की उचित स्वास्थ्य जांच होना जरूरी होता है. एनएफएचएस-चार के मुताबिक जन्म के दो दिनों के भीतर भारत में डॉक्टर या नर्स के द्वारा केवल 24.3 प्रतिशत बच्चों की ही जांच होती है.बिहार में 10.8 प्रतिशत, छत्तीसगढ़ में 34.2 प्रतिशत, गुजरात में 15.8 प्रतिशत, झारखंड में 21.7 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 17.5 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 30.5 प्रतिशत, राजस्थान में 22.6 प्रतिशत, उत्तरप्रदेश में 24.4 प्रतिशत और पश्चिम बंगाल में 26.7 प्रतिशत बच्चों की ही जरूरी जांच हुई.

जिन बच्चों का जन्म घर पर हुआ, वे तो संरक्षण से पूरी तरह से बाहर हैं. ऐसे 2.5 प्रतिशत बच्चों की ही जांच डॉक्टर या नर्स के द्वारा हुई.

टीकाकरण

बच्चों को कुछ गंभीर बीमारियों से बचाने के लिए भारत में टीकाकरण कार्यक्रम चलता है. देश में ताज़ा स्थिति यह है कि 62 प्रतिशत बच्चों को ही पूरा टीकाकरण का अधिकार मिल रहा है. उत्तरप्रदेश में 51.1 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 53.6 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 56.3 प्रतिशत राजस्थान में 54.8 प्रतिशत, झारखंड में 61.9 प्रतिशत, गुजरात में 50.4 प्रतिशत और बिहार में 61.7 प्रतिशत बच्चों का पूर्ण टीकाकरण हुआ. जब बच्चे बीमारियों से सुरक्षित नहीं होते हैं, तब वे जीवित भी नहीं रह पाते हैं.

इस विषय को हमें सामाजिक व्यवहार – सामाजिक नीति और समझ के स्तर पर खंगालने की कोशिश करना है. यूँ तो नवजात शिशु और बच्चों की मौत का संकट शुद्ध रूप से आजीविका, प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच, सामाजिक-आर्थिक बराबरी, हिंसा, खाद्य सुरक्षा और संस्कृति से सम्बंधित है. यह अपने आप में कोई समस्या नहीं है, यह तो समस्याओं से पैदा होने वाला परिणाम है. अतः जरूरी है कि हम उन पहलुओं को समझें, जिनसे मृत्यु का परिणाम पैदा होता है. 1000 दिनों की नीति यह साबित करती है कि कुपोषण और बीमारी को अलग-अलग करके देखना, बच्चों के जीवन को संकट में डालता है. इसके साथ ही विभागीय समन्वय से ही इन 1000 दिनों को सुरक्षित बनाया जा सकता है.

मातृत्व हक सरकारी खजाने पर बोझ नहीं है

भारत में 93 प्रतिशत महिलाओं के मातृत्व हक के लिए कोई व्यावहारिक व्यवस्था नहीं रही है. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून के तहत लागू किये जा रहे मातृत्व सहयोग के प्रावधान भी बहुत कमज़ोर कर दिए गए हैं.

श्रम करते हुए भी, महिलाओं की भूमिका और योगदान को कभी मापा और स्वीकार नहीं किया गया. इससे उनके जीवन पर जोखिम बढ़ता गया है. महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और नवजात शिशु मृत्यु दर के चिंताजनक स्तर के मद्देनज़र प्राथमिकता के आधार पर लोकव्यापिकृत और निःशर्त मातृत्व हक कार्यक्रम को लागू किये जाने की जरूरत रही है. मातृत्व हक का मतलब है गर्भवती और धात्री महिलाओं को आर्थिक लाभ/वेतन के साथ अवकाश का अधिकार मिलना, ताकि वे आराम कर सकें और गर्भस्थ शिशु का पूरा विकास हो सके. इसके साथ ही प्रसव के बाद कम से कम छः माह तक शिशु को स्तनपान का अधिकार मिल सके, इसके लिए उन्हें प्रसव के तत्काल बाद मजदूरी या श्रम के लिए न जाना पड़े. नवजात शिशु के बौद्धिक विकास, अतिसार सरीखे संक्रमण से सुरक्षा, ल्यूकीमिया से बचाव के लिए स्तनपान जरूरी है.

अगस्त 2017 के पहले हफ्ते में यूनिसेफ-विश्व स्वास्थ्य संगठन ने ग्लोबल ब्रेस्टफीडिंग स्कोरकार्ड जारी किया. इसमें बताया गया है कि भारत में हर साल 1 लाख बच्चे इसलिए मर जाते हैं क्योंकि उन्हें माँ का दूध नहीं मिलता है. बच्चों को पर्याप्त स्तनपान नहीं मिल पाने के कारण भारत की अर्थव्यवस्था को 14 बिलियन डालर यानी लगभग 9100 करोड़ रुपए का नुकसान होता है.

इन्स्टीट्यूट आफ सोशल साइंस रिसर्च, क्वींसलैंड विश्वविद्यालय (आस्ट्रेलिया) की शोधकर्ता निंग जियांग के मुताबिक सप्ताह में 20 से 34 घंटे काम करने वाली महिलाओं के मामले में 45 प्रतिशत संभावना होती है कि छः माह का होने से पहले स्तनपान बंद हो जाए, जबकि 35 घंटे से ज्यादा काम करने वाली महिलाओं के मामले में यह संभावना 60 प्रतिशत तक होती है. ऐसे में जरूरी था कि भारत सरकार और राज्य सरकारें गंभीरता से व्यापक और बहिष्कारक शर्तों से मुक्त मातृत्व हक कार्यक्रम लागू करें; पर ऐसा नहीं हुआ.

भारत की सर्वोच्च संवैधानिक संस्था-संसद ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून में प्रावधान किया था कि प्रत्येक गर्भवती स्त्री और स्तनपान करवाने वाली माताओं को 6000 रूपए की सहायता, जिसे क़ानून प्रसूति लाभ कहता है, दिया जाएगा. यह लाभ उन महिलाओं को नहीं मिलेगा, जो राज्य या केंद्र या

सार्वजनिक क्षेत्र में नियमित रूप से काम कर रही हैं और जिन्हें किसी अन्य क़ानून के तहत यह लाभ मिल रहा है. इसके अलावा क़ानून में किसी और शर्त या पात्रता बिंदु का उल्लेख नहीं था.

यह एक महत्वपूर्ण कदम था, जिसका मकसद महिलाओं और छोटे बच्चों के जीवन की सुरक्षा करना था. मौजूदा सन्दर्भ में जबकि, भारत दुनिया में सबसे ऊँचे मातृ मृत्यु अनुपात और सबसे ज्यादा नवजात शिशु मृत्यु की घटनाओं वाला देश है, वहां स्थिति को बदलने के लिए मातृत्व हक कार्यक्रम (सरकारी भाषा में प्रसूति प्रसुविधा कार्यक्रम) एक अनिवार्य कोशिश थी. लेकिन इस कोशिश को सरकार ने खुद असफल करने की पहल की है.

यदि जनगणना-2011 के आंकड़ों का विश्लेषण किया जाए, तो पता चलता है कि भारत में एक जीवित जन्म शिशुओं वाली महिलाओं का प्रतिशत 17.6 है, जबकि दो जीवित जन्म शिशुओं वाली महिलायें 28.1 प्रतिशत है, तीन जीवित शिशु को जन्म देने वाली महिलायें 20.8 प्रतिशत हैं. 33.5 प्रतिशत महिलाओं ने चार या इससे ज्यादा जीवित शिशुओं को जन्म दिया है. इसे स्पष्ट हो जाता है कि केवल 31.70 प्रतिशत प्रसवों की स्थिति में ही मातृत्व सहयोग योजना का लाभ महिलाओं को मिल पायेगा. इसमें यदि गर्भपात और मृत शिशु जन्म के मामलों को जोड़ा जाए तो बहिष्कार का दंश भोगने वाली महिलाओं की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ जाती है. सरकार ने इन शर्तों के पीछे तर्क दिया है कि हम बाल विवाह को बढ़ावा नहीं देना चाहते हैं, इसलिए इस योजना में आयु सीमा 19 वर्ष है और सरकार नहीं चाहती है कि महिलायें बार-बार गर्भवती हों, क्योंकि इससे उनके स्वास्थ्य पर गहर असर पड़ता है. बहरहाल सरकार को यह तो मानना ही चाहिए कि अब भी हमारे रूढ़िवादी बहुसंख्यक समाज में लड़की की शादी कब होगी, यह उसके माता पिता या परिजन तय करते हैं, जबकि वह कब और कितने बच्चों की माँ बनेगी, यह उसके पति और पितृसत्तात्मक समाज तय करता है; इन दोनों ही स्थितियों में महिला का जीवन संकट में होता है. इन्हें मातृत्व सहयोग योजना के लाभ से वंचित रखकर उनके जोखिम को तिगुना किया जा रहा है.

जिस हक के बारे में संसद ने क़ानून महिलाओं का बहिष्कार करने वाली कोई शर्त लागू नहीं की थी किन्तु भारत सरकार ने इसमें ऐसी शर्तें डालीं, जिनसे कुल 69.3 प्रतिशत प्रसव (गर्भावस्था के प्रकरण) मातृत्व हक के दायरे से बाहर हो जाते हैं.

इस सरकार ने सबसे पहले एक व्यापक कदम वर्ष 2016 के आखिरी दिन उठाया. 31 दिसंबर 2016 को प्रधानमंत्री ने राष्ट्र के नाम संबोधन में कहा कि "गर्भवती महिलाओं के लिए भी एक देशव्यापी योजना शुरू की जा रही है. अब देश के सभी 650 से ज्यादा जिलों में सरकार गर्भवती महिलाओं को अस्पताल में पंजीकरण और डिलीवरी, टीकाकरण एवं पौष्टिक आहार के लिए 6 हज़ार रुपए की आर्थिक मदद करेगी. ये राशि गर्भवती महिलाओं के अकाउंट में ट्रांसफर कर दी जायेगी. देश में मातृ मृत्यु दर को कम करने में इस योजना से बड़ी सहायता मिलेगी. वर्तमान में ये योजना 4000 रुपए की

आर्थिक मदद के साथ देश के केवल 53 जिलों में पायलट प्रोजेक्ट के रूप में चलाई जा रही थी." (उन्होंने यह जिक्र नहीं किया कि यह योजना वर्ष 2013 में बनाए गए राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून का हिस्सा है.)

इसके बाद 1 फ़रवरी 2017 को भारत के वित्त मंत्री ने आम बजट पेश करते हुए कहा कि "माननीय प्रधानमंत्री द्वारा 31 दिसंबर 2016 को गर्भवती महिलाओं को वित्तीय सहायता की राष्ट्रव्यापी स्कीम की घोषणा पहले ही की जा चुकी है. इस स्कीम के अंतर्गत उस गर्भवती महिला के बैंक खाते में सीधे 6000 रुपए अंतरित कर दिए जाएंगे, जो किसी चिकित्सा संस्था में बच्चे को जन्म देंगी और अपने बच्चे का टीकाकरण करवाएंगी."

इसके लिए वास्तविक जरूरत 16.44 हज़ार करोड़ रुपए की थी, पर अपने बजट में वित्त मंत्री ने इस कार्यक्रम के लिए 2700 करोड़ रुपए का आवंटन किया है. पिछले वर्ष इसके लिए 634 करोड़ रूपये के बजट का प्रावधान था. आज देश में लैंगिक भेदभाव के खिलाफ़ जिस तरह की प्रतिबद्ध नीतियों की जरूरत है, मौजूदा नज़रिए और बजट आवंटन दोनों, उसके पक्ष में नज़र नहीं आते हैं.

और फिर बुना गया शर्तों का जाल

3 जनवरी 2017 को पत्र सूचना कार्यालय ने महिला और बाल विकास मंत्रालय की तरफ से आधिकारिक वक्तव्य जारी किया. इसमें कहा गया कि भारत सरकार मानव विकास के लिए पोषण के रूप में विशेष तौर पर सर्वाधिक कमजोर समुदायों में प्रत्येक महिला की इष्टतम पोषण स्थिति को सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध है. यह गर्भावस्था और स्तनपान दोनों की अवधि के दौरान अधिक महत्वपूर्ण है. एक महिला के पोषण की स्थिति और उसके स्वास्थ्य प्रभावों के साथ-साथ उसके शिशु के स्वास्थ्य और विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है. एक कुपोषित महिला अधिकांश तौर पर एक कम वजन वाले बच्चे को जन्म देती है. जब इस कुपोषण का प्रारंभ गर्भाशय से होता है तो विशेष रूप से इसका प्रभाव महिला के सम्पूर्ण जीवन चक्र पर पड़ता है. आर्थिक और सामाजिक दवाब के कारण बहुत सी महिलाओं को अपनी गर्भावस्था के अंतिम दिनों तक परिवार के लिए आजीविका कमानी पड़ती है. (जब सवाल महिला और बच्चे के जीवन का है, तो फिर इसमें महिलाओं का बहिष्कार करने वाली शर्तें जोड़ना सरकार की असंवेदनशीलता नहीं है तो क्या है)

उपर्युक्त मुद्दों के समाधान के लिए महिला और बाल विकास मंत्रालय ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम की धारा 4 (बी) के प्रावधानों के अनुसार गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लाभ हेतु सशर्त नकद हस्तांतरण योजना मातृत्व लाभ कार्यक्रम (क़ानून में इसे सशर्त योजना नहीं कहा गया था) का गठन किया गया था. इस योजना के अंतर्गत गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं को नकद प्रोत्साहन प्रदान किया जाता है. इस

योजना में प्रसव से पूर्व और पश्चात आराम, गर्भधारण और स्तनपान की अवधि में स्वास्थ्य और पोषण स्थिति में सुधार एवं जन्म के छह महीनों के दौरान स्तनपान कराना बच्चे के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है. इस योजना के अंतर्गत, केंद्र सरकार, राज्य सरकार अथवा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में नियमित रूप से रोजगार करने वाली अथवा इसी प्रकार की किसी योजना की पात्र महिलाओं को छोड़कर सभी गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं को पहले दो जीवित शिशुओं के जन्म के लिए तीन किस्तों में 6000 रुपये का नकद प्रोत्साहन देय है.
जनवरी 2017 तक भारत सरकार कह रही थी कि जिन्हें किन्हीं अन्य संस्थाओं/निकायों से मातृत्व हक मिल रहे हैं, उन्हें छोड़ कर सभी गर्भवती और धात्री महिलाओं को पहले दो जीवित शिशुओं के जन्म के लिए तीन किस्तों में 6000 रूपए का नकद प्रोत्साहन देय है.

इसके बाद मई 2017 को महिला और बाल विकास मंत्रालय ने पलटी खाई. मातृत्व लाभ कार्यक्रम की प्रशासकीय सहमति जारी करने वाले पत्र में 2 नई बातें जोड़ दी गयीं – एक : इस योजना में महिलाओं को 5000 रुपए का लाभ मिलेगा और शेष 1000 रुपए उन्हीं महिलाओं को मिलेंगे, जिनका प्रसव संस्थागत होगा. उल्लेखनीय है कि पहले से चल रही जननी सुरक्षा योजना में 1400 रुपए (गाँव) और 1000 रुपए (शहर) का प्रावधान रहा है. उसे इस नई योजना से जोड़ दिया गया. इस शर्त में मध्यप्रदेश सरकार ने अपने स्तर पर और कठोरता ला दी. राज्य में तय किया गया कि मातृत्व सहयोग की कुल राशि में से 1500 रुपए तभी मिलेंगे जब स्वास्थ्य विभाग द्वारा अनुमोदित अस्पताल में प्रसव हुआ हो.

दो : इस योजना में पात्र महिलाओं को पहले जीवित बच्चे को जन्म के लिए ही लाभ मिलेगा. पहले से चल रही इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना में दो जीवित जन्म तक यह हक दिए जाने का प्रावधान था.

मातृत्व हक केवल एक आर्थिक सहयोग योजना नहीं है. यह समाज में लैंगिक गैर-बराबरी और उससे जुड़े घातक जोखिमों को सीमित करने का माध्यम भी है. इससे न केवल मानवीय हकों की सुरक्षा होती है, बल्कि राजनीतिक-आर्थिक संसाधनों की सुरक्षा भी हो सकती है. बहुत जरूरी है कि नीति बनाने वाले और कार्यक्रम लागू करने वाले अपनी सोच में सुधार लाएं.

ISBN No. : 978-9381408-40-7